International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(5): 141-142

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(5): 141-142
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 10-07-2020
Accepted: 12-08-2020

डॉ. रीता सिंह
पी–एच0डी0 (संस्कृत)
माँ सरस्वती महिला पी0जी0 कालेज, चाँदपुर, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रीता सिंह
पी–एच0डी0 (संस्कृत)
माँ सरस्वती महिला पी0जी0 कालेज, चाँदपुर, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

''पुंसवन'' संस्कार आयुर्वैज्ञानिक दृश्टि में

डॉ. रीता सिंह

प्रस्तावना

संस्कार शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से घञ् प्रत्यय के योग से बना है। इस शब्द का बोल–चाल में अर्थ है – 'नया रूप देना।'[1] नया रूप देने का अर्थ है दोषों को निकालकर गुणों की स्थापना करना। 'चरक–संहिता' में गुण की प्रतिस्थापना को ही 'संस्कार' शब्द से अभिहित किया गया है– ''संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते''[2] मीमांसक यज्ञ के अंगभूत तत्त्वों को ही संस्कार कहते हैं–''करणं हि नाम स्वाभाविकानां द्रव्याणामभिसंस्कारः।'' संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संस्कृत–साहित्य में 'संस्कार' शब्द बृहदर्थों में प्रयुक्त है, जैसे–संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य, पूर्णता, व्याकरण सम्बन्धी शुद्धि, संस्करण, परिष्करण, शोभा, आभूषण, स्वभाव, क्रियाछाप, स्मरणशक्ति बढ़ाने वाला प्रभाव, शुद्धि–क्रिया, धार्मिक विधि–विधान, अभिषेक, विचार–भावना, क्रिया की विषेशता आदि।

हिन्दू संस्कारों का वर्णन वेदों के कतिपय सूक्तों में, ब्राह्मणग्रन्थों, गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों स्मृतियों आदि में दृष्टिगत होते हैं। मेरी दृष्टि में वेदों में 'संस्कार' शब्द का प्रयोग तो नहीं मिलता, लेकिन कतिपय स्थलों पर 'उपनयन', 'अन्त्येष्टि' आदि कुछ संस्कारों के अगें के वर्णन अवश्य उपलब्ध होते हैं।[3]

आज के युग में संस्कारों का महत्त्व नगण्य होता जा रहा है। जिन उद्देश्यों के लिए संस्कारों का प्रादुर्भाव हुआ वे समयान्तराल में विलीन होते जा रहे हैं। अब संस्कारों को लोग अन्धविश्वास माने हैं, लेकिन 'संस्कार' सरल–विश्वास, अशुभ भावनाओं का प्रतिकार, सांसारिक अभीष्ट की प्राप्ति, मोक्ष–प्राप्ति, चारीत्रिक उन्नति तथा व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं। संस्कारों द्वारा संस्कार्य का मार्गदर्शन होता है। ये आयुवृद्धि के साथ–साथ जीवन को अभीष्ट दिशा की ओर ले जाते हैं। संस्कारों के अनुपालन से मनुष्य का शारीरिक, बौद्धिक व वैयक्तिक उत्कर्ष ही नहीं होता, अपितु व्यक्ति का सामाजिक व धार्मिक जीवन उन्नति की तरफ अग्रसर होता है।

संस्कारों की संख्या के विषय में शास्त्रों में अनेक मत हैं, लेकिन मुख्य सोलह संस्कार माने जाते हैं। मैंने इन सोलह संस्कारों में 'पुंसवन' संस्कार को अपना विषय बनाकर उस पर अपने शास्त्रसम्मत विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है–

''पुंसवन''

''पुमान् सूयते अनेन कर्मणा इति पुंसवनम्''[4]

अर्थात् जिस क्रिया के माध्यम से पुरुषसन्तान उत्पन्न हो वह क्रिया 'पुंसवन' कहलाती है। वैसे 'पुंसवन' की क्रिया पूर्ण निश्चयात्मक स्थिति में नहीं होती कि पुरुष संतति ही उत्पन्न होगी। पूर्व जन्म कृत कर्म के प्रबल होने पर वर्तमान कृत्य नष्ट हो जाते हैं और 'पुंसवन' क्रिया सफल नहीं होती है, इसके विपरीत की स्थिति में सफल होती है।[5]

गृहसूत्रों में इस संस्कार को तृतीय महीने में करने का प्राविधान है[6], क्योंकि इस अवधि तक गर्भस्थ बच्चे का लिंग निर्माण नहीं होता है अर्थात् वह अस्पष्ट लिंग वाला होता है। वैसे तो शास्त्रों में लिंग ज्ञान का शत–प्रतिशत आधार वाला कोई उपाय उपलब्ध नहीं है, फिर भी विद्धानों ने इसे ज्ञात करने के उपायों का संकेत किया है, जैसे वायें अंग से अधिक कार्य करना, खाने की वस्तुओं में स्त्रीलिंग की वस्तुओं की चाह करना, बांयी कोख की तरफ गर्भ का बढ़ना, गर्भमण्डल का गोलाकार न होना, वाये स्तन में सर्वप्रथम दूध का आना स्त्री सन्ततति के द्योतक होते हैं। इसके विपरीत लक्षण पुरुष संस्तति के द्योतक होते हैं। गर्भ में यदि पुरुष सन्तति रहती है तो गर्भोदक की मात्रा कम होती है व गर्भ में कन्या रहने पर गर्भोदक की मात्रा अधिक होती है। एक अंग्रेजी पत्र में जर्मन डा0 ने प्रयोग किया, उनका विचार है कि यदि गर्भस्थ पुत्र होगा तो मात्रा के दाहिनी आँख में एक स्वर्ण रेखा का चक्कर दिखायी देगा व गर्भस्थ कन्या होने पर बायी आँख में नीला चक्कर दिखलायी देगा।[7]

वैसे तो लिंग ज्ञान का कोई शत–प्रतिशत उपाय नहीं है, जो आधुनिक तरीके हैं उन पर सरकारी प्रतिबन्ध है। इसी अव्यक्तता का लाभ उठाकर 'पुंसवन' संस्कार को करने का विधान है।

'पुंसवन' संस्कार प्रथम गर्भ के तृतीय मास में किया जाता है–''प्रथमे गर्भे तृतीये मासि पुंसवनम्।''[8] ''पुंसवनम् तृतीय मासि।''[9]

गृह्यसूत्रों में 'पुंसवन' संस्कार को इस प्रकार करने का विधान है– प्रातः काल गर्भिणी उत्तराग्र कुशों पर बैठकर स्नान करे, तदुपरान्त संकल्प व नान्दीश्राद्धादि करे। अग्नि के पश्चिम तरफ उत्तराग्र कुशाओं पर बैठी हुई दम्पति वेदी–संस्कार, गृह्याग्नि स्थापन व आज्यसंस्कारादि कृत्यों को करें। तीन आहुतियों को व्याहृतियों द्वारा प्रदान करें। पूर्वाभिमुखी वधु के पीछे पति अवस्थित हो बिना मंत्र के दाहिने कन्धे का स्पर्श कर ''ऊँ मासौमित्रावरुणौ''।[10] मंत्र से नाभि का स्पर्श करें। तत्पश्चात् ईशानकोणस्थ किसी बटवृक्ष वृक्ष का शुंग (मुकुलितपल्लव) को तोड़ लेवे तथा इसके बदले 21 यव या उड़द को वृक्षस्वामी को मूल्य रूप में देवें। क्रयण करते समय ''ऊँ यद्यसि सौमी''[11] इत्यादि आठ मन्त्रों को भी उच्चारित करें। घर लाकर उसे आकाशस्य अर्थात् किसी ऊँचे स्थान पर रख देवे। केवल घृत से भूरादि व्याहृतियों को प्रदान करें। सील और लोढ़े को भली–भाँति प्रक्षालित करके कोई ब्रह्मचारिणी, पतिव्रता अथवा ब्राह्मण वंश की कोई कन्या उस शुंग को भली–भाँति व शीघ्रतापूर्वक पीसे। प्रातःकाल में इस कृत्य के समाप्त हो जाने पर स्नान की हुई गर्भिणी वधु उत्तराग्र कशाओं पर अग्नि के पश्चिम भाग में पूर्व की दिशा की तरफ सिर करके लेट जाये। पति उसके दाहिनी नासिका के छिद्र में 'ऊँ घुमानग्नि'[12] मन्त्र से दाहिने हाथ के अंगुष्ठ और अनामिका अंगुलियों द्वारा शुंग को छोड़े। तत्पश्चात् घी की आहुतियों को प्रदान कर इस कार्य को पूर्ण करें।

'पुंसवन' संस्कार में वृक्ष के शुंग के उपयोग का विधान किया गया है। शुंग कैसा हो? इस विषय में उल्लेख किया गया है कि शुंग उभयफल से युक्त अशुष्क तथा कृमिरहित हो। शुष्क फल रहने से उसमें रस का अभाव होगा, इसलिए अशुष्क फल का विधान है। कृमियाँ अनेक रोगों की मूल होती है इसलिए कृमिरहित फल का विधान किया गया है। फल को भूमि पर रखने का विधान नहीं है, क्योंकि धूल के कणों में अनेक रोग उत्पादक कण हो सकते है। वट–वृक्ष के शुंग के प्रयोग में भी आयुर्वेदिक सम्मति है। वट–वृक्ष के शुंग में ऐसा तत्त्व पाया जाता है कि वह गर्भस्थ अस्पष्ट लिंग वाले बच्चे में सौम्य–तत्त्व की वृद्धि करता है और आग्नेय तत्त्व का ह्रास करता है। पुरुष सौम्य तत्त्व प्रधान होता है और स्त्रियाँ आग्नेय तत्त्व प्रधान। सौम्य तत्त्व की वृद्धि होने से पुरुष संतति होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त गर्भिणी के ऊपर भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है कि मेरे मनोनुकूल सन्तान उत्पन्न होगी। आयुर्वेद में वटवृक्ष के शुंग के अलावा भी अनेक औषधियों को देने का विधान है, जैसे–सुलक्ष्मणा, सहदेवा, विश्वदेवी में से किसी एक को दूध में बारीक पीसकर गर्भिणी की दाहिनी नासिका में तीन या चार बूँद डालने का विधान है।[13] श्वेत कटेरे की जड़ को पीसकर नासिका में डालने का विधान है। कमल पत्र, नीलकमलपत्र व बरगद के कोपल का नस्य लेने का विधायन है। शालिधान्य को पीसकर पिण्ड बनाकर इसे पकायें। पकाते समय निकली हुई भाप को सूघें और इनको निचोड़कर इसका पानी रूई से दाहिनी नासिका में डालें। सोने–चाँदी या लोहे की पुरुष की प्रतिमा बनाकर दूध, दही या पानी में डालकर पुनः प्रतिमा निकालकर दूध, दही या पानी को पी जायें।[14]

गर्भिणी स्त्री के दक्षिण नासिका में वट–वृक्ष के शुंग का रस डालने का विधान है क्योंकि इस रस में गर्भपात–निरोध के तत्त्व विद्यमान होते हैं। सुश्रुत–संहिता में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि वट–वृक्ष में ऐसे तत्त्व विद्यमान है कि वह गर्भ के समय के सभी कष्टों को दूर करता है जैसे–तिल्ली की अधिकता को दूर करता है तथा दाहादि का निवारण करता है आदि।[15] इस प्रकार 'पुंसवन' संस्कार का आयुर्वेद की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ सूची

1. संस्कार विधि विमर्श – अत्रिदेव गुप्त, पृष्ठ–7
2. चरक–संहिता, वि0स्था0, अध्याय–1
3. प्राचीन भारतीय कला और संस्कृति प्रारम्भ से गुदा युग पर्यन्त, पृष्ठ 268–69 (चरक–संहिता विमानस्थान अध्याय–1)
4. चरक–संहिता, शारीरस्थान अध्याय 8
5. संस्कारविधिविमर्श – अत्रिदेव गुप्त, पृष्ठ–95
6. गोभिल गृह्यसूत्र 2–6–1, जैमिनि गृह्यसूत्र 6/3, खादिर व द्राह्यायण गृह्यसूत्र 2/2/17
7. इलेस्ट्रेटेड वीकली 12 जून 1950, संस्कार विधिविम''र्ा, अत्रिदेव गुप्त पृष्ठ 55 के आधार पर।
8. खादिर व द्राह्यायण गृह्यसूत्र – 2/2/17
9. जैमिनि गृह्यसूत्र पृष्ठ 6
10. मंत्र–ब्राह्मण 1/4/8
11. गोभिल गृह्यसूत्र 2/6/7
12. मन्त्र ब्राह्मण 1/4/9
13. सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय–2
14. संस्कार विधि विमर्श, अत्रिदेव गुप्त, पृष्ठ 58/59
15. सुश्रुत–संहिता सूत्रस्थान अध्याय 38

सहायक ग्रन्थ–सूची

1. चरक संहिता (प्रथम भाग) सम्पादक राजेश्वर दत्त शास्त्री, पं0 यदुनन्दन उपाध्याय, पं0 गंगा सहाय पाण्डेय, डा0 बनारसी दास गुप्त, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सम्वत् 2034
2. प्राचीन भारतीय कला और संस्कृति – डा0 राजकिशोर सिंह एवं डा0 ऊषा यादव, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, तृतीय संस्करण–1975
3. संस्कार विधिविमर्श – अत्रिदेव गुप्त, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस सं0 1951
4. गोभिल–गृह्यसूत्र – चिन्तामणि भट्टाचार्य, गेटोपोलिटेन प्रिटिंग एण्ड पब्लिशिंग हाउस लि0 कलकत्ता 1936
5. जैमिनि गृह्यसूत्र – डा0 डब्ल्यू कैलण्ड, मोतीलाल–बनारसीदास–1922
6. खादिर गृह्यसूत्र – हिन्दी अनुवाद – डा0 उदय नारायण सिंह, शास्त्र– पब्लिशिंग हाउस, मुजफ्फरनगर, 1934
7. द्राह्यायण गृह्यसूत्र – हिन्दी अनुवादक – डा0 उदय नारायण सिंह, शास्त्र पब्लिशिंग हाउस मुजफ्फरपुर, 1934
8. मन्त्र ब्राह्मण – सत्यव्रत सामश्रमि, कलकत्ता 1890 ई0
9. आयुर्वेद का इतिहास – अत्रिदेव विद्यालंकार – हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग वि0स0 1900
10. सुश्रुत–संहिता – जय कृ'ण दास आयुर्वेदगन्थ माला, चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी सम्वत् 1980
11. हिन्दू–संस्कार – डा0 राजबलि पाण्डेय, चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, तृतीय संस्करण 1978